जेंडर विमर्श वाया मीडिया

डॉ. मीना शर्मा,

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जनसंचार माध्यमों के बिना सरपट दौड़ती दुनिया की कल्पना करना भी संभव नहीं है, जैसे दुनिया की कल्पना स्त्री जाति के बिना अधूरी है। मगर जनसंचार माध्यमों में स्त्री छवि का आंकलन करें तो बाजार आधारित मीडिया तंत्र ने उसे पदार्थ में तब्दील कर दिया है। रूढ समाज की साँकलें पितृसत्ता, यौन शुचिता परिवार और आर्थिक निर्भरता की सॉकलों को उसने ध्वस्त कर अपने लिये अलग स्थान बनाया है। मगर अब भी उसकी स्थिति वह नहीं हो पायी है, जो होनी चाहिए थी। समाज–देश दुनिया के तमाम हिस्सों में वह आज भी फरुष वर्चस्व का शिकार है। आज फरुष वर्चस्व और बाजार की लोलुप दृष्टि ने मिलकर उसके शोषण को ज्यादा पेचीदा बना दिया है। मीडिया के सभी स्वरूपों में स्त्री छवि विशेषतया कमनीय छवि को भुनाया जा रहा है। अमेरिका के इतने बड़े मीडिया तंत्र में आपरा विनप्रेफ जैसी कम ही महिलाएँ हैं। विचार, सै(ांतिक की पर ग्लैमर हावी है। मीडिया ने जो स्त्री छवि गढ़ी है, वह मर्द की इच्छित छवि है। मर्दवादी एप्रोच जनसंचार माध्यमों की दिशा तय कर रही है। टेलीविजन के लिए पामेला एंडरसन, ब्रिटनी स्पीयर्स खबर है, राखी सावंत खबर है मगर आंग सान सू की इतनी बड़ी खबर नहीं है। यह ही मीडिया की अधिनायकवादी नीति है। ऊपर से सभी चीजें बड़ी सॉफ्रट दिखाई देती हैं किंतु नीतियों में स्त्री का स्थान घटता चला जाता है।

मीडिया की भूमिका केवल सनसनी का बेचने की हो गयी है। विदेशों की भी सत्ता प्रयोजित खबरों को टी.वी. अथवा प्रिंट माध्यमों पर प्रचारित किया जाता है। विदेशों में व्याप्त भूख नस्ली हिंसा, जन आंदोलनों की भूमिका छोटे किसानों के विरू(कॉरपोरेट हाउसों का शोषण समाचार माध्यमों में प्रायः खबर नहीं बनता। सास्किया सीसेन ने कभी कहा था सत्ता लिंग (जेंडर) पर खड़ी है, यही बात वर्तमान समय में मीडिया के बारे में की जा सकती है तमाम वादो–दावों के बावजूद जेंडर को लेकर हमारा संचार तंत्र आज भी पूर्वाग्रही है। स्त्री की उत्पाद (Product) के रूप में प्रस्तुत करना उसकी नीति रही है।

इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों पर नजर दौड़ायें तो महिलाओं को पेज–3 रिपोर्टर बना दिया जाता है। ग्लैमर संसार, हीरो हीरोईन फैशन जंगल की पहलकदमी करने के लिए उन्हें कहा जाता है। राजनैतिक–आर्थिक मुद्दों पर प्रायः उनसे पत्रकार रिर्पोटिंग कराने में परहेज किया जाता है। यह स्थिति तो ऐसे ही हुई जैसे प्राचीन काल में विंदी माथे पर लगाना, चूल्हे–चौके तक उसकी भूमिका को समेट दिया जाता था। और फिर यदि कोई महिला इस सामंती प्रेफम को तोड़ती है तो उसकी स्थिति पेज–3 की मुख्य पात्र माधवी (कोंकेणा सेन शर्मा) जैसी होती है। इस यथास्थितिवाद को तोड़ने में प्रभादत्त जैसी पत्रकारों ने मृणाल् पांडे, वार्तिका नंदा, रंजना अरगडे मूल्यसापेक्ष पत्रकारिता को आगे बढ़ा रही है। भूख, गरीबी वर्गीय विषमता, जातीय हिंसा से जुड़े मुद्दों पर भी उनकी राय बेबाक होती है। मीडिया के भीतरी ही वह वैकल्पिक मीडिया की

आवश्यकता को निरंतर उठाते रहे हैं जिसमें स्त्रियों , विस्थापितों, अल्पसंख्यकों दलितों का महत्वपूर्ण स्थान हो।

इन दिनों साहसी पत्रकारिता में भी महिलाओं की भूमिका बढ़ी है बरखादत्त ;नीरा नाडिया प्रकरण से पहलेद्ध साहसी पत्रकारिता का रोल मॉडल थी। कारगिल के बंकरो में घुसकर भारत–पाक युद्ध को कवर करते हुए उन्होंने पत्रकारिता का स्वरूप ही बदल दिया। जर्नलिज्म को जुनून से जोड़कर वास्तविक अर्थों में उसे जनता की पत्रकारिता बनाया युवा स्त्रियों को जैसे बरखादत्त में अपना आदर्श दिखता था। लेकिन बरखा दत्त के होने से ही हम मीडिया में महिलाओं की भागीदारी का मूल्यांकन नहीं कर सकते। महिलाएं आज भी जनसंचार माध्यमों में जिंसीकरण का शिकार हैं। समाचार वाचिका के इंटलैक्चुएल एटीट्यूड से ज्यादा उसका ड्रामाई अंदाज लोगों को काफी आकर्षित करता है। यह एन.डी. टी.वी. आज तक, इंडिया टी.वी., ग्लैमर के तड़के से लोगों को बांधना चाहते हैं यहाँ तक की रॉखी सावंत को, प्रभु चावला बीच में लाकर किसी भी तरह श्रोता को बाँधना चाहते हैं। ग्लोबलाइलेंज अथवा पोस्ट ग्लोबलाइजेशन के बाद जनसंचार माध्यमों में स्त्री की भूमिका बड़ी पेचीदा हो गयी है वह उसकी कमनीयता देह का दोहण मीडिया तंत्र अपने पक्ष में कर रहा है और उसकी इच्छानुसार पहले तो रनिवासों में सामंत, राजा स्त्री का गोपनीय रूप से शोषण करते थे। वर्तमान समय में मीडिया स्त्री का सार्वजनिक शील हरण कर रहा है। बड़ी बेहयाई और कॉइयापन के साथ।

मीडिया को यदि हम समाचार पत्र–पत्रिकाओं और इलैक्ट्रानिक माध्यमों तक ही ना समेटें तो सिनेमा भी इसकी परिधि में आता है। हिंदी फिल्में महिलाओं की स्थिति को लेकर लगातार चिंतनशील रही हैं, पाकीजा, मुगलेआजम आदि फिल्मों ने हिंदी सिनेमा के शुरूआती दौर में ही स्त्री पक्ष को बड़े शानदार ढंग से अभिव्यक्त किया। सामंती परिवेश की घुटन, विवशता, द्वंद को मुगले आजम की अनारकली (मधुबाला) पाकीजा में नृत्यांगना स्त्री के पीड़ा मर्म को बखूबी दिखाता रहा। दो बीघा जीमन (सत्यजीत राय) कृषि जीवन के बीच पिसती स्त्री के जीवन का मर्सिया है।

वंदिनी में स्त्री की छटपटाहट, बाजार (स्मिता पाटिल) में हैदराबाद का सामंती परिवेश और रिश्तों की हाट मंडी में बिकती कोमल उम्र की लड़कियों की छटपटाहट, खाड़ी देशों में शेखों के यहाँ उनका दोजख जैसा जीवन रजतपट पर अंकित होता है। आँधी (सुचित्रा सेन) इंदिरा गांधी के इमरजेन्सी पर कटाक्ष है। राजनैतिक सशक्तिकरण महिलाओं के जीवन में किस सीमा तक परिवर्तन लाया, यह फिल्म उसका भी आंकलन है। उदारीकरण के बाद जगमोहन मुँदंडा ने बवंडर और चिंगारी में स्त्री शोषण के विरूद्ध एक दस्तावेज लिखा। 'अनुराग मीरा नायक' 'काम सूत्रा नेमसेक में दैहिक संबंधों में फरुष के वर्चस्व को चुनौती देती है। और इन स्थितियों के बरक्स स्त्री के दैहिक दृढ़ पक्ष को दर्शकों के सामने रखती हैं। दीपा मेहता 'फायर' में स्त्री समलैंगिकता अथवा शासकीय सासेन के कमेंट सत्ता जेंडर पर टिकी है, का दूसरा पाठ प्रस्तुत करती है। फायर को देखने के बाद प्रतीत होता है कि स्त्री तमाम फरुष सत्ता जनित बेडियों, धर्म, जाति सम्प्रदाय, मीमांसा स्मृतियों, दैहिक संबंधों, दैहिक आनंदों में फरुष के वर्चस्व को नकारती है। स्त्री अपने आप में पूर्ण है या दैहिक संबंधों में भी 'फायर' का यही 'लुवेलआव' है। अनुराग कश्यप ;गुलालद्ध की पात्र के माध्यम से कहलवाते हैं 'तुम सोचते हो लोगों ने मेरा प्रयोग किया, किंतु यह तो मैं तय करूंगी उन्होंने मेरा प्रयोग किया, अथवा मैंने उन्हें अपनी सफलता की सीढ़ी बनाया। यह है ग्लोबलाइजेशन के साथ जी रही पीढ़ी का दृष्टिकोण। लेकिन सिनेमा में प्रयुक्त स्त्री छवि ;नायिकाद्ध इत्तर बात की जाये तो

संपूर्ण सिनेमा पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। आज भी अभिनेत्रियों को अभिनेताओं के मुकाबले कम मेहनताना मिलता है, मनोरंजन उद्योग में उनकी भूमिका को देखते हुए फरुष निर्देशकों के मुकाबले उन्हें उतना स्पेस नहीं दिया जाता। लीना यादव, मीरा नायर, दीपा मेहता, गुरिंदर चड्ढा आदि ही महिला निर्देशकों के नाम दिखाई देते हैं। यही स्थिति सिनेमा से इत्तर अन्य माध्यमों की है।

सभी जनसंचार माध्यमों में स्त्री के सौन्दर्य को ज्यादा तर्ज देकर बाजार अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है। वैश्विक मीडिया की बात करें तो वहां भी फरुष सत्ता का वर्चस्व है चाहे व सिनेमा हो अथवा प्रिंट, इलैक्ट्रॉनिक पत्रकारिता सभी में दिखाई पड़ता है। बौद्धिक क्षेत्रों से ज्यादा सौन्दर्य और पैफशन जगत तक महिला मीडिया कर्मियों को केंद्रित करना फरुषवादी सत्ता का स्पष्ट एजेंडा है। जब तक महिलाएं स्वयं को फरुष के नजरिए से देखना नहीं छोड़ंगी तब तक महिलाओं की स्थिति में कोई भी 'रेडिकल' परिवर्तन होना असंभव प्रतीत होता है। पूरा मीडिया जगत में महिलाओं की सहभागिता महत्वपूर्ण होने के बावजूद नीति नियन्ताओं में उसकी स्थिति उंगली पर गिनने लायक है कुछ बरखादत्त, मृणालपाण्डे, जयन्ती घोष जैसे नाम आ जाने से पूरी पत्रकारिता में महिलाओं की स्थिति आशाजन नहीं है यह अवश्य है कि विज्ञापन जगत में महिलाओं का वर्चस्व है। यदि हम एक न्यायपूर्ण और खुशहाल समाज चाहते हैं तो लोकतन्त्र के चौथे स्तम्भ में भी महिलाओं को पूरा स्पेस देना होगा जिससे सच कहने की ताकत और ज्यादा मजबूत हो सके और यदि दुनिया का सच समाज के सामने आ सके। घर की चार दीवारी से बाहर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उसका हस्तक्षेप और ज्यादा बढ़ सके। तभी तमाम अकादमिक बहसों में स्त्री संबंधी सिद्धांतकियों को अमली जामा पहनाया जा सकेगा। इन्हीं उम्मीद और परिवर्तन कामी आशाओं के साथ हम उम्मीद करते हैं कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब इन विमर्शों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी उस समतामूलक दिन के लिए हम तैयार हैं।

संदर्भ

1. पत्रकारिता का बदलता स्वरूप और न्यू मीडिया, हरीश अरोड़ा, साहित्य संचय प्रकाशन, नई दिल्ली
2. ग्लोबल मीडिया और हिन्दी पत्रकारिता, हरीश अरोड़ा, साहित्य संचय प्रकाशन, नई दिल्ली
3. सम्बोधन – स्त्री विमर्श अंक, अक्तूबर 2005–जनवरी 2006, पृष्ठ 171